ISSN: 2230-7850 IMPACT FACTOR : 5.1651 (UIF)

INDIAN STREAMS RESEARCH JOURNAL

VOLUME - 7 | ISSUE - 5 | JUNE - 2017

उत्तराखण्ड में नाथपंथी विचारधारा और इस्लाम धर्म का ऐतिहासिक अध्ययन।

डॉ. कैसर अली
शोध अध्येता , हे. न. ब. (केन्द्रीय विश्वविद्यालय)
श्रीनगर, गढ़वाल, उत्तराखण्ड।

प्रस्तावना-

उत्तराखण्ड राज्य का ऐतिहासिक अध्ययन करने पर यह ज्ञात होता है कि प्राचीन काल में कुमाऊँ को मानस खण्ड और गढ़वाल को केदारखण्ड कहा गया है। इस भू–भाग में प्राचीन काल से अनेक प्रजातियों के आवागमन के फलस्वरूप एक विशिष्ट संस्कृति का विकास हुआ, इस भू–भाग पर मौर्य–गुप्त काल में स्थानीय प्रजातियों का स्वायत्त शासन कुलिन्द, यौधेय, नाग, पौरव राजवंशों के अधीन प्रशासित रहा। विदेशी यात्री ह्वेनसांग ने इस भू–भाग के चार राज्यों यथा सुघ्न, ब्रह्मपुर, गोविषाण और सुवर्णगोत्र का उल्लेख किया है। परवर्ती काल में कत्यूर सत्ता ने समस्त उत्तराखण्ड को एक राज्य के रूप में संगठित करने में सफलता प्राप्त की। लेकिन इस वंश के पत्तनोन्मुख होने के फलस्वरूप अराजकता व्याप्त हो गयी और अनेक छोटी–छोटी ठकुराइयों की स्थापना हुई। इसी काल में दिल्ली सल्तनत की भी स्थापना हुई, जो भारतीय इतिहास में एक विदेशी सत्ता स्थापना की प्रथम सफलता थी।

इस भू–भाग में मध्यकाल से प्रारम्भ होकर वर्तमान समय तक मुस्लिमों का आगमन होता रहा है। मुस्लिमों के भारतवर्ष में प्रवेश के प्रारम्भिक दौर में उत्तराखण्ड का यह भू–भाग घने निर्जन जंगलों, घास के मखमली बुग्यालों, पवित्र जीवनदायिनी नदियों, ऊँचे–ऊँचे अलंघ्य पर्वतों, संकरे दुष्कर एवं बीहड़ पर्वतीय मार्गों का भौगोलिक प्रदेश था। इस प्रदेश के बारे में आरम्भ में मुस्लिमों को कोई ज्ञान न था। सल्तनतकाल में जब उत्तर भारत में मुस्लिम शासकों का प्रवेश भारतीय भू–भाग पर कब्जा कर अपना शासन स्थापित करने तक केन्द्रित रहा उस दौर में सत्ता संघर्ष की प्राप्ति में असफल रहे प्रत्याशियों ने इस भू–भाग के पर्वतीय प्रदेश, पाद चोटियों एवं तराईभाबर का प्रयोग इन संघर्ष के दौरान होने वाले युद्धों, झड़पों और षड्यन्त्रों से भागकर शरण लेने के लिए किया।

महमूद गजनवी, मुहम्मद गोरी, गुलाम वंश के शासक कुतुबुद्दीन ऐबक, इल्तुतमिश, रजिया सुल्तान, नासिरूद्दीन महमूद, गयासुद्दीन बलबन, खिलजी वंश के अलाउद्दीन खिलजी, तुगलक वंश के मुहम्मद बिन तुगलक, आदि सल्तनत कालीन शासकों के समय में इस भू–भाग में मुस्लिम समाज का आव्रजन किसी विशेष प्रयोजन के लिए नहीं हुआ अपितु यदा–कदा संघर्ष के दौरान यह क्षेत्र शरणस्थली बनने तक ही सीमित रहे। उत्तराखण्ड भू–भाग में पन्द्रहवीं शती में अजयपाल द्वारा गढ़राज्य और कीर्तिचन्द द्वारा कुमाऊँ राज्य की स्थापना की गयी जो कालान्तर में पारस्परिक संघर्ष के फलस्वरूप मुस्लिम सत्ता के निकट सम्पर्क में आयी।

कालान्तर में मुगल सम्राटों द्वारा भी इस भू–भाग में विभिन्न सैनिक अभियान चलाये गये और इस प्रकार से इस क्षेत्र में मुस्लिम संस्कृति का प्रादुर्भाव हुआ जो आगे चलकर मुस्लिम आव्रजन का एक कारण बना। इस मुस्लिम आव्रजन के फलस्वरुप यहाँ के निवासियों को एक नयी संस्कृति से रु–ब–रु होने का मौका मिला। गढ़वाल का सामाजिक जीवन एवं संगठन अत्यधिक असमान है। प्राचीनकाल में विभिन्न मैदानी क्षेत्रों से लोग पर्वतीय क्षेत्रों में आकर बसे। अतः यहाँ विभिन्न समुदायों एवं धर्मों के लोग निवास करते हैं। (पंवार, मोहन सिंह, गैरौला राकेश, 2007: 79) इस्लाम धर्म के सूफी मत से सम्बन्ध रखने वाले प्रसिद्ध सूफी सन्त हजरत साबिर साहब जिनकी मजार शरीफ पीराने कलियर में स्थित है। (शर्मा, देवीदत्त, 2012: 440) इस भू–भाग में चौदहवीं सदी में आए थे। हजरत साबिर साहब की विभिन्न धर्मों के बीच काफी श्रद्धा है। उत्तराखण्ड में साबिर साहब साम्प्रदायिक सौहार्द के प्रतीक है।

साबिर साहब ने इस्लाम धर्म का प्रचार–प्रसार ठीक उसी प्रकार से किया जैसे देश के अन्य भू–भागों में विभिन्न सूफी सिलसिले के सन्तों ने किया। मध्यकाल का समय धर्म और समाज के क्षेत्र में जबरदस्त परिवर्तन का समय था इसी कारण सूफी सन्तों द्वारा जनता के बीच रहकर दिए गए धार्मिक उपदेश और विचारधारा का गहरा प्रभाव सामान्यजन पर पड़ा। साबिर साहब ने इस्लाम धर्म के एकेश्वरवाद और सर्वशक्तिमान सत्ता को स्वीकार किया था। आप ने आपसी भाईचारे, विभिन्न धर्मों के बीच मेल–मिलाप, और मिलजुलकर रहने की बात अपने उपदेशों में कही।

इसी प्रकार से कुमाऊँ मण्डल में सूफी सन्त कालू सैय्यद की भी काफी मान्यता है, कहा जाता है कि 1398 ई0 में गंगा तट पर हुए युद्ध में अनेक पीर और वली योद्धा शहीद हो गए थें, उनमें से एक आप भी थे। (शर्मा, देवीदत्त, 2012: 104)

उत्तराखण्ड में कालू सैय्यद के कई आस्था स्थल है जिसमें अल्मोड़ा, हल्द्वानी और लोहाघाट आदि काफी प्रसिद्ध एवं प्रमुख है। इसी प्रकार मैमंदापीर जिसे एक नाथपंथी मुस्लिम सिद्ध फकीर कहा गया है, गढ़वाल मण्डल में झाड़े–ताड़े से सम्बद्ध मंत्रों के संदर्भ में इसकी बड़ी मान्यता पायी जाती है, ऐतिहासिक स्तर पर जोशीमठ में प्राप्त नाथपंथी ग्रन्थ गुरूपादुका (पांडुलिपि) में गढ़वाल की दक्षिणी सीमा पर गंगातट पर पीर पैगम्बरों वाली तुर्कों की सेना के साथ हुए राजा धामदेव के घमासान युद्ध के वर्णन के सन्दर्भ में मैमंदापीर का उल्लेख किया गया है। (शर्मा, देवीदत्त, 2012: 565)

मैमंदापीर ने नाथपंथ को अपनाकर जोशीमठ की नाथपंथी गद्दी के साथ स्थायी सम्बन्ध स्थापित कर लिया था। इसकी गणना न केवल नाथपंथियों द्वारा गिनाए जाने वाले भैरव, नारसिंह, कलुवा आदि बावन वीरों में की गई है अपितु वीरों का वीर एवं पीरों का पीर भी कहा गया है। यथा – 'मैमंदावीर वीरनु वीर, पीरनु को पीर' आदि। इनसे सम्बद्ध रख्वाली मंत्रों में गोरखपंथी साधुओं से सम्बद्ध मंत्रों के समान ही 'ओम् नमो गुरू को आदेश' के साथ स्मरण किया जाता है। यथा – 'ओम् नमो, गुरू को आदेश, लुवा को कोटा, तामा को पाट, ताड़ा फुटी निकालो मैमन्दा पीर मसाण.... कमरी को पुत्र को जायौ। सलीक माई को पुत्र मैमन्दापीर भैराऊँ।' एक मंत्र के शब्दों 'नाहर सेली कासी का पैरी आऊँ' से ज्ञात होता है कि सम्भवतः इन्होंने नाथपंथ की दीक्षा काशी में ली थी। (शर्मा, देवीदत्त, 2012: 566)

इनके मंत्रों, इनके प्रभाव एवं वीरत्त्व के सम्बन्ध में कहा गया है– पठाण का नाती, बाबा वीर मैमन्दा तू कैसो आयो। हाम–हाम करते आयो, छामछाम करतो आयो। सुवा सांगला सोई सी आयो। लुवा का पावंतो आयो। धर्ज का गोला फोड़ंतो आयो। धरती अगास फेरन्तो बाबा पीर मैमन्दा।। इनका कोई मंदिर नहीं होता, किन्तु मंत्रों की कार्यसिद्धि पर इनके नाम सवा सेर आटे का रोट, सवा सेर का चूर्मा व पान बीड़ी अर्पित किया जाता है। इनका प्रभाव क्षेत्र भी मुख्यतः हरिजन वर्ग रहा है।

ठीक इसी समय उत्तराखण्ड में नाथपंथ सम्प्रदाय अपनी उच्च स्थिति प्राप्त कर चुका होता है। नाथ सम्प्रदाय को सिद्धमत या सिद्धसम्प्रदाय कहा जाता है। नाथ सम्प्रदाय सम्भवतः सिद्धसम्प्रदाय की एक शाखा के रूप में प्रचलित हुआ। नाथयोगी, आदिनाथ या शिवजी को अपने सम्प्रदाय का प्रवर्तक मानते हैं। इस सम्प्रदाय को व्यवस्थित रूप गोरखनाथ ने दिया। अनुमान किया जाता है कि गोरखनाथ जिनका समय तेरहवीं शती के पूवार्द्ध में होने की पुष्टि होती है उन्होंने गढ़देश के अन्तर्गत धौलाउड्यारी (धवलगुहा) नामक स्थान पर तपस्या की थी। इसकी पुष्टि में अब तक प्रचलित एक रख्वाली को उद्धृत किया जाता है। केदारखण्ड ग्रन्थ के अनुसार गोरखनाथ का आश्रम केदारनाथ के निकट मन्दाकिनी के तट पर था। गोरखनाथ महान् सिद्धपुरूष थे। भारतवर्ष के कोने–कोने में उनके अनुयायी आज भी पाए जाते हैं। (डबराल, शिवप्रसाद, 1971: 153)

भक्ति आन्दोलन से पूर्व सबसे शक्तिशाली धार्मिक आन्दोलन गोरखनाथ का योगमार्ग ही था। गोरखनाथ ने सिद्धों के वज्रयान और रहस्यपूर्ण तथा लोकविरूद्ध आचार को हटाकर, तपस्या एवं योग का प्रचार किया। फलतः समकालीन हिन्दू समाज में नाथ सम्प्रदाय की प्रतिष्ठा बढ़ गई। गोरखनाथ का समय विक्रम की ग्यारहवीं शती के अन्तर्गत अर्थात् ईसा की दसवीं शती या अधिक से अधिक ग्यारहवीं शती के प्रारम्भिक भाग में माना जाता है। यदि गोरखनाथ द्वारा गढ़देश में तपस्या करने की अनुश्रुति का कोई ऐतिहासिक आधार है तो गढ़देश में नाथ सम्प्रदाय के प्रचार का आरम्भ उनके जीवनकाल से ही माना जा सकता है। गढ़देश में नाथों की अनेक वर्तमान बस्तियों से तथा अधिकांश शिव मन्दिरों पर आज भी उनके अधिकार से इस अनुमान की पुष्टि होती है।

एक अन्य अनुश्रुति के अनुसार नाथ सम्प्रदाय भी शैव सम्प्रदाय का ही एक अंग है, क्योंकि पूर्व मध्ययुग में शैव सम्प्रदाय नए रूप में और नए आयाम में विकसित हुआ, यही कालान्तर में नाथ सम्प्रदाय या नाथपंथ अथवा हठयोग और सहजयान सिद्धि कहा गया। दसवीं शती के उत्तरार्द्ध में मत्स्येन्द्र अथवा मच्छन्दर नाथ ने इस सम्प्रदाय का प्रचार किया। मत्स्येन्द्र नाथ के नाम के आगे नाथ होने से यह 'नाथ सम्प्रदाय' कहलाया। मत्स्येन्द्र नाथ ने गोरखनाथ को दसवीं–ग्यारहवीं शताब्दी में यह विद्या प्रदान की। (विजल्वाण, जगदीश प्रसाद, 2007: 385) एटकिन्सन के अनुसार गोरखनाथ आदिनाथ का पौत्र और मत्स्येन्द्र नाथ का पुत्र तथा कनफट्टे जोगियों के सम्प्रदाय का संस्थापक था।

कहा जाता है कि गोरखनाथ ने अपने सम्प्रदाय के प्रचार के लिए असम से लेकर पेशावर से भी आगे तक तथा कश्मीर और नेपाल से लेकर सारे भारत में भ्रमण किया था। अनेक स्थानों पर अपने सम्प्रदाय के केन्द्र स्थापित करके उन्होंने वहाँ अपने योग्य शिष्यों को प्रचार कार्य के लिए नियुक्त किया था। (डबराल, शिवप्रसाद, 1971: 153) किन्तु ऐतिहासिक दृष्टिकोण से इसके समय को लेकर विभिन्न अनुश्रुतियाँ प्रचलित है। एक अनुश्रुति के अनुसार कनफटा जोगी–पंथ के संस्थापक गोरखनाथ के सम्मान में श्रीनगर में एक प्रतिष्ठान है। गोरखनाथ को शिव का अवतार माना जाता है, वे कबीर के समकालीन थे और 'विल्सन' के अनुसार पन्द्रहवीं शताब्दी के शुरूआत में हुए थे। कुमाऊँ पहाड़ियों में भैरव के रूप में शिव की जो पूजा होती है उसका श्रेय इनके अनुयायियों को ही जाता है। (एटकिंसन, ई0 टी0, 2003: 535)

इसी तरह नेपाल में शिव को पशुपतिनाथ और शम्भुनाथ तथा गोरखपुर में गोरखनाथ के रूप में पूजा जाता है। इन्हें गोरखालियों का विशेष संरक्षक माना जाता है। 'मिस्टर ब्रायन हॉड्जसन' का कहना है कि लोकोक्तियों के अनुसार अवलोकितेश्वर, अब्जपाणि या पद्मपाणि आदिबुद्ध के आदेशानुसार मत्स्येन्द्र के रूप में अवतरित हुए। 'उन्होंने शिव द्वारा पार्वती को योग–विद्या समझाते हुए सुनने के लिए स्वयं को मछली के पेट में छुपा लिया और इस प्रकार उन्होंने वह विद्या सीखी जो कभी शिव ने आदिबुद्ध से सीखी थी और तब अपनी पत्नी को समुद्र के किनारे सिखाई थी। शिव को संदेह हो गया कि कोई सुन रहा है इसलिए उन्होंने उस श्रोता को प्रकट होने का आदेश दिया, पद्मपाणि गेरू चढ़े और राख से सने वस्त्र पहने प्रकट हुए। उनके कानों में कुंडल थे क्योंकि वे योगिराज थे। वे मत्स्य यानि मछली से प्रकट हुए थे इसलिए मत्स्येन्द्रनाथ कहलाए और उनके अनुयायियों ने नाम के अंत में 'नाथ' शब्द इस्तेमाल करना शुरू किया। इस कथा से हमें आस्था के समर्थन में एक स्पष्ट प्रमाण

मिलता है कि योगी–पंथियों और बौद्धों में एकता हुई थी, यह ऐक्य सम्भवतः मत्स्येन्द्र के माध्यम से हुआ जिन्हें बौद्धों ने अपने भगवान बने सन्तों में से एक में तब्दील कर दिया। (एटकिंसन, ई0 टी0, 2003: 536)

1667 ई0 में श्रीनगर में नाथ प्रतिष्ठान स्थापित करने के बाद से अब तक सात महन्त हो चुके हैं – भोटिया सहजनाथ, बालकनाथ, तीर्थनाथ, गमीरनाथ, मनोहरनाथ, प्रतापनाथ और सारस्वतनाथ। एक विवादास्पद मत के अनुसार कबीर और गोरखनाथ के बीच बातचीत में गोरखनाथ स्वयं को मत्स्येन्द्रनाथ का पुत्र और आदिनाथ का पोता बताते हैं। लेकिन नाथ सम्प्रदाय की एक पुस्तक के अनुसार मत्स्येन्द्रनाथ, गोरखनाथ से पाँच आध्यात्मिक पीढ़ी पहले हुए थे जिससे मत्स्येन्द्र पन्द्रहवीं शताब्दी में हुए ठहरते हैं और अगर कबीरपंथियों की पुस्तक को सही माना जाए तो उसमें गोरखनाथ का जो काल बताया गया है वह भी सही ठहरता है। गोरक्षसिद्धान्त–संग्रह नामक ग्रन्थ में नाथों की सूची में सत्यनाथ का नाम गोरख से पहले दिया है। किन्तु सत्यनाथियों की पूजा–प्रकिया, जीवनशैली आदि से पता चलता है कि यह शाखा है, और इसका मूल गोरख सम्प्रदाय में है। अतः गोरख को सत्यनाथ से पूर्ववर्ती मानना चाहिए।

अगर हिन्दुओं का चित्तौड़ से प्रवजन करने का समय 'हेमिल्टन' के अनुसार चौदहवीं शताब्दी के शुरू में माना जाए तो यह संभव है कि यही वह काल रहा होगा जब वहाँ और 'हिन्दुस्थान' के पूर्वी प्रांतों में मत्स्येन्द्र और गोरख के सिद्धान्त में शिव पूजा भी जुड़ गई। 'गोरखनाथ' विद्वान थे और वे अपने पीछे दो संस्कृत पुस्तकें 'गोरक्ष शतक' और 'गोरक्ष कल्प' छोड़ गए। एक और, तीसरी पुस्तक 'गोरक्ष–सहस्रनाम' भी शायद उन्होंने ही लिखी।

गढ़वाल में नाथ साहित्य पांडुलिपियों के रूप में काफी मिलती है, इसमें गोरक्षा शतक, गोरखा कल्प, गोरखा सहस्र नाम एवं इनके अतिरिक्त घटस्थापना, इन्द्रजाल, सुकलेस, समैण और निरकांर महत्त्वपूर्ण हैं। इनसे हमें यहाँ के विभिन्न नाथों की जानकारी प्राप्त होती है, जैसे मत्स्येन्द्रनाथ, गोरखनाथ, महारुद्रनाथ, चौरंगीनाथ, मणिकनाथ, अष्टनाथ, पिंगोलनाथ, चण्डनाथ, प्रचण्डनाथ एवं बालकनाथ तथा अजेपाल नाथ आदि प्रमुख नाथों के नाम इनमें आए हैं। (विजल्वाण, जगदीश प्रसाद, 2007: 386)

'हजारीप्रसाद द्विवेदी' ने 'नाथसम्प्रदाय' नामक ग्रन्थ में तथा 'कल्याणी मल्लिक' ने 'नाथ सम्प्रदायेर इतिहास', 'दर्शन ओ साधनप्रणाली' नामक बँगला ग्रन्थ में नवनाथों की जो विभिन्न सूचियाँ दी है, उनमें सत्यनाथ के सम्बन्ध में मतभेद है। 'गोरक्ष सिद्धान्त–संग्रह' में सत्यनाथ का उल्लेख गोरखनाथ से पहले किया गया है। शंकराचार्य के दशनामी सन्यासियों की भाँति गोरखनाथ के जिन अनुयायियों को बारहपंथी योगी कहा जाता है, उनमें सत्यनाथी योगियों को स्थान दिया गया है। सत्यनाथियों के प्रधान मठ उड़ीसा में पुरी से लेकर थानेश्वर, करनाल तक फैले हैं। यह भी सम्भव हो सकता है कि देवलगढ़ के सत्यनाथियों का सम्बन्ध उत्तर भारत के पश्चिमी भाग से रहा हो, जहाँ उड़ीसा की अपेक्षा शतियों पहले मुसलमान बड़ी संख्या में बस चुके थें। इस पंथ पर इस्लाम के संसर्ग का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। (डबराल, शिवप्रसाद, 1971: 154)

'जयशंकर मिश्र' के अनुसार इस सम्प्रदाय में नौ नाथों को दिव्य पुरूष के रूप में माना गया था। इनमें आदिनाथ (प्रथम नाथ) स्वयं शिव थे। गुरू गोरखनाथ ने इसके प्रसार में बहुत योग दिया एवं उनका नाम चमत्कारिक माना जाने लगा। विश्वास किया जाता है कि उनका नाम लेने से सिद्धि प्राप्त होती है। उन्होंने (गोरखनाथ) पुरानी प्रथाओं के स्थान पर त्याग, तपस्या और योग की नई परम्पराओं पर जोर दिया। गुरू गोरखनाथ की पँक्ति में ही कापालिक औधड़ तथा कनफटों का सम्बन्ध भी अवधूतों और नाथों से जोड़ा गया है। (विजल्वाण, जगदीश प्रसाद, 2007: 385)

नाथों ने जैनी महापुरूषों के समान कठोर योग, तपस्यामय जीवन बिताने की प्रथा अपनाई। गोरखनाथ ने परम तत्त्व को ज्योतिस्वरूप बतलाया। निराकार, अखंड ज्योतिस्वरूप, अद्वैत परमतत्त्व की प्रतिमा नहीं हो सकती। नाथ सम्प्रदाय के मठ–मन्दिरों में कोई प्रतिमा नहीं होती। साक्षी स्वरूप अखण्ड दीप प्रज्ज्वलित रखा जाता है। एकेश्वर, प्रतिमा–पूजाविहीन एवं सदाचार प्रमुखता वाले इस सम्प्रदाय की ओर कुछ मुसलमान भी आकर्षित हुए। गोरखबानी के अन्तर्गत 'सबदी' के पदों से स्पष्ट है कि गोरख मुसलमानों के संसर्ग में आए थे। उपरोक्त तथा अन्य साक्ष्यों के आधार पर गोरखनाथ का समय ईसा की ग्यारहवीं शती माना जाता है, जब पश्चिमोत्तर भारत पर मुसलमान छा गए थे। गोरखनाथ के जन्मस्थान का सही पता नहीं है। वे भारत में घूमते–फिरते थे। केदारखण्ड ग्रन्थ के अनुसार गोरखनाथ का एक आश्रम केदारनाथ तीर्थ के निकट मन्दाकिनी के तट पर था। श्रीनगर में प्रसिद्ध गोरखनाथ गुफा है। मुस्लिम प्रभाव की बहुलता से स्पष्ट है कि मूल रूप में यह शाखा पंजाब, अफगानिस्तान में आरम्भ हुई होगी, जहाँ मुसलमानों की बहुलता और प्रभुता थी। (डबराल, शिवप्रसाद, 1987: 86)

नाथवर्ग के अन्तर्गत कनफटा और बिना कनफटा दोनों आते थे। कनफटों या बिना कनफटों का प्रमुख तीर्थ गोरखपुर में था। प्रत्येक नाथ परिवार में केवल एक–दो पुरूष ही कान छिदाकर कनफटा बनते थे। गोसांई, जंगम, बैरागी और नाथ कभी–कभी एक–दूसरे के परिवार में विवाह कर लेते थे और गृहस्थी बनकर खेती करने लगते थे। उनके सम्प्रदाय का नाम ही उनका जाति का नाम बन गया था। (डबराल, शिवप्रसाद, 1978: 135)

'विष्णुदत्त कुकरेती' के अनुसार केदारखण्ड में नाथों की सन्तान को डल्या, ओल्या या दर्शनी नाथों के रूप में सम्बोधित किया जाता है, जिनका निवास कई गाँवों में है। उनके पूर्वजों की समाधियाँ आज भी देखने को मिलती हैं। यदि गढ़वाल में शिव मन्दिरों की संख्या का अनुमान लगाया जाए तो वर्तमान में इनकी संख्या गढ़वाल में तीन सौ से ऊपर होगी। 'बाबुलकर' के अनुसार इन मन्दिरों पर (केदारनाथ मन्दिर को छोड़कर) नाथों का पूर्ण अधिकार है। (विजल्वाण, जगदीश प्रसाद, 2007: 385)

कहा जाता है कि गोरखनाथ के शिष्यों ने बारह पंथों की स्थापना की थी। उनके एक शिष्य सत्यनाथ द्वारा स्थापित पंथ का मुख्य स्थान उड़ीसा में पाताल भुवनेश्वर है। सत्यनाथ के पंथ की एक शाखा श्रीनगर (गढ़वाल) के पास देवलगढ़ में आज तक चली आ रही है। देवलगढ़ में सत्यनाथ के पंथ की स्थापना कब हुई, यह विदित नहीं है। उड़ीसा और उत्तराखण्ड के मध्य दसवीं–ग्यारहवीं शती में सांस्कृतिक सम्पर्क था। उत्तराखण्ड के कतिपय मन्दिरों के स्थापत्य पर उड़ीसा के मन्दिरों की शैली का प्रभाव बताया जाता है। कुमाऊँ में एक स्थान आज तक पाताल भुवनेश्वर कहलाता है। (डबराल, शिवप्रसाद, 1971: 154)

यह निश्चित है कि ईसा की पन्द्रहवीं शती के अन्त तक उत्तराखण्ड में सत्यनाथ की शिष्य–परम्परा महत्त्वपूर्ण स्थानों पर बस चुकी थी तथा जनता पर उनका प्रभाव था। गढ़देश और कुमाऊँ दोनों के इतिहासों से विदित होता है कि ईसा की सोलहवीं शती में इन प्रदेशों में सत्यनाथी योगियों का बड़ा सम्मान होता था। देवलगढ़ के सत्यनाथ का गढ़नरेश अजयपाल पर तथा उनके शिष्य नागनाथ का चम्पावत नरेश कीर्तिचन्द पर बड़ा प्रभाव था। (डबराल, शिवप्रसाद, 1971: 154)

'हरिकृष्ण रतूड़ी' के अनुसार भूतनाथ ने सत्यनाथ भैरव के रूप में गढ़वाल के राजा अजयपाल को उस समय दर्शन दिए जब वह चम्पावत के राजा से पराजित हो गया था, और दर्शन के बाद अजयपाल इतना शक्तिशाली हुआ कि आजीवन सभी जगह उसे विजयश्री प्राप्त हुई। उत्तराखण्ड में आज तक यह मान्यता चली आ रही है कि इन योगियों के आशीर्वाद से ही अजयपाल और कीर्तिचन्द ने अपने शत्रुओं से परित्राण पाकर अपने शासित प्रदेशों में वृद्धि की थी। (रतूड़ी, हरिकृष्ण, 1928: 177)

गढ़नरेश अजयपाल का उल्लेख नाथ पंथ के ग्रन्थों में किया गया है। इस नरेश ने देवलगढ़ में सत्यनाथ भैरव के मन्दिर की स्थापना की थी। अनुश्रुति के अनुसार गुरू सत्यनाथ भैरव के आशीर्वाद से ही अजयपाल को गढ़देश के राज्य की प्राप्ति हुई थी। नाथ पंथ के ग्रन्थों में रानी कर्णावती का भी उल्लेख मिलता है। गढ़नरेशों ने इस धर्म के विकास हेतु प्रशासनिक सहायता प्रदान की थी। पृथ्वीपतिशाह ने गोरखनाथ गुफा श्रीनगर के महन्त को आजीविका हेतु कुछ भूमि दान की थी। इसका उल्लेख ताम्रपत्र में भी किया गया है। श्रीनगर, देवलगढ़ में आज भी कनफटा जोगियों की सन्तानें निवास करती हैं। वर्तमान समय में इनका समस्त गढ़वाल में फैलाव हो गया है। गढ़देश के समान कुमाऊँ में भी इस सम्प्रदाय का प्रभाव था। कुमाऊँ की कत्यूरी पट्टी में डंगोली ग्राम के निकट नागनाथ नाथगुरू का मन्दिर स्थापित है, जिसके निकट अनेक नाथों की समाधियाँ बनी हैं। नाथ पंथ में गृहस्थी एवं जोगी दोनों तरह के लोग सम्मिलित थे। सत्यनाथ भैरव को शंकर का अवतार माना जाता है। अतः नाथपंथ शैव धर्म से सम्बन्धित था। नाथपंथों के ग्रन्थों, तंत्रमंत्रों में अजयपाल का नाम उल्लिखित है तथा नाथपंथ के गुरूओं में उसका नाम आता है। इससे स्पष्ट है कि अजयपाल नाथ सम्प्रदाय में अटूट आस्था रखता था। (नेगी, शन्तन सिंह, 1988: 315)

देवलगढ़ के आसपास के क्षेत्र में सत्यनाथ पीर की गद्दी का बड़ा मान है। सत्यनाथपंथी पीर वहाँ आज तक चले आ रहे हैं। ये गृहस्थ हैं। पिता अपने पुत्र को नाथ या पीर बनाता है और उसके कान में मुद्रा पहनाता है। पीर शिखा नहीं रखता, दाढ़ी रखता है। वह तहमद पहनाता है और सत्यपीर कहलाता है। पिता की मृत्यु पर उसे सत्यपीर की गद्दी मिलती है। वह भी गृहस्थ होता है और सन्तान उत्पन्न करता है। मृत्यु होने पर उसे समाधि दी जाती है। पीर के अन्य पुत्रों को, जिन्हें गद्दी नहीं मिलती, मृत्यु होने पर जलाया जाता है। सत्यनाथपंथ ने सम्भवतः हिन्दुओं और मुसलमानों की रीति–नीतियों का समन्वय करने का प्रयत्न किया था, पर उसकी मान्यता मुख्यतः हिन्दुओं में ही थी। (डबराल, शिवप्रसाद, 1971: 155)

जनजीवन और सांस्कृतिक दृष्टिकोण से भी इस काल (सोलहवीं से बीसवीं सदी) में गढ़वाल मध्यदेश से असम्बद्ध नहीं रहा। नाथ–सिद्धों और कबीरपंथियों ने उत्तरी भारत के समान हिमालय को भी प्रभावित किया। (चातक, गोविन्द, 2003: 40) नाथ सम्प्रदाय भी शैव सम्प्रदाय का ही एक अंग है क्योंकि पूर्व मध्ययुग में शैव सम्प्रदाय नए रूप में और नए आयाम में विकसित हुआ, यही कालान्तर में नाथ सम्प्रदाय या नाथपंथ अथवा हठयोग और सहजयान सिद्धि कहा गया। (विजल्वाण, जगदीश प्रसाद, 2007: 385)

'गोरखनाथ' जिनका समय तेरहवीं शती के पूर्वार्द्ध में होने की पुष्टि होती है अपनी रचना 'गोरख–बानी' में इस्लाम की तनिक आलोचना नहीं करते हैं। वे अपने को महंमद (मुहम्मद पैगम्बर) के दर्शन के रहस्य को समझने वाला घोषित करते हैं और उस दर्शन के प्रशंसक विदित होते हैं। (डबराल, शिवप्रसाद, 1932: 76) वे सबदी चौदह (14) में कहते हैं –

'उत्पत्ति हिन्दु जरणा जोगी अकलि परी मुसलमानी।'

उत्पत्ति (जन्म) से हम हिन्दु हैं,
जरणां के कारण जोगी हैं
और अकल से मुसलमानी पीर।

नाथों ने तो 'पीर' शब्द को ही अपना लिया था। उनके 'महंत' को महंत न कहकर 'पीर' कहा गया है।

गोरखनाथ की जन्मभूमि का निश्चित पता नहीं है, पर उन्होंने कुछ वर्षों तक उत्तराखण्ड में योग साधना अवश्य की थी। (डबराल, शिवप्रसाद, 1932: 77) गोरखनाथ ने गढ़राज्य में अपने पंथ को ऐसा स्वरूप देने का प्रयास किया जो हिन्दू और मुस्लिम दोनों को ग्राह्य हो सके। गढ़वाल में नाथ पंथ के उस रूप का भी प्रचार हुआ, जो इस्लाम से प्रभावित है। सोलहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में गढ़वाल में सत्यनाथ और कुमाऊँ में सत्यनाथ के शिष्य नागनाथ, दो अत्यन्त प्रभावशाली नाथ योगी हुए। इनकी समाज में बड़ी प्रतिष्ठा थी। पीछे भक्ति आन्दोलन से मान्यता में कमी आने लगी। फिर भी आज भी गढ़वाल के ग्रामीण समाज में सत्यनाथ की बड़ी मान्यता है। (डबराल, शिवप्रसाद, 1932: 79)

यद्यपि नाथ सम्प्रदाय ने अपने उदय के समय अपनी पृथक पहचान बनाई, लेकिन कालान्तर में इसके कुछ व्यक्ति जाति नाम बदलकर अन्य जातियों में मिल गए। गढ़वाल के शिव मन्दिरों में भी नाथ सम्प्रदाय के पुजारी हैं, लेकिन यह सम्प्रदाय गढ़वाल में अपने पैर न जमा सका। (विजल्वाण, जगदीश प्रसाद, 2007: 386)

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1 – पंवार, मोहन सिंह, गैरौला राकेश, 2007, गढ़वाल हिमालय के प्रमुख मेले एवं त्यौहार तथा सांस्कृतिक प्रादेशीकरण, रिसर्च इण्डिया प्रेस, नई दिल्ली।

2 – शर्मा, देवीदत्त, 2012, उत्तराखण्ड ज्ञानकोष, भाग–1 एवं भाग–2, अंकित प्रकाशन, हल्द्वानी (नैनीताल)।
3 – डबराल, शिवप्रसाद, 1971, उत्तराखण्ड का इतिहास, भाग–4, वीरगाथा प्रकाशन, दोगड्डा गढ़वाल।
4 – विजल्वाण, जगदीश प्रसाद, 2007, टिहरी–उत्तरकाशी जनपद का सांस्कृतिक और राजनीतिक इतिहास (प्राचीनकाल से 1947 ई0 तक), जनानन्द प्रकाशन, उत्तरकाशी (गढ़वाल मण्डल), उत्तरांचल।
5 – एटकिंसन, ई0 टी0, 2003, हिमालयन गजेटियर, ग्रंथ–2, भाग–2, हिन्दी अनुवाद (प्रकाश थपलियाल), उत्तराखण्ड प्रकाशन, हिमालय संचेतना संस्थान, आदिबदरी, चमोली, उत्तरांचल।
6 – डबराल, शिवप्रसाद, 1987, उत्तराखण्ड का राजनैतिक तथा सांस्कृतिक इतिहास, भाग–11, के अन्तर्गत गढ़वाल का नवीन इतिहास, खण्ड–1, वीरगाथा प्रकाशन, दोगड्डा गढ़वाल।
7 – डबराल, शिवप्रसाद, 1978, उत्तराखण्ड का राजनैतिक तथा सांस्कृतिक इतिहास, भाग–8, के अन्तर्गत गढ़वाल का नवीन इतिहास, खण्ड–4, वीरगाथा प्रकाशन, दोगड्डा गढ़वाल।
8 – रतूड़ी, हरिकृष्ण, 1928, गढ़वाल का इतिहास, (चतुर्थ संस्करण 1995), भागीरथी प्रकाशन गृह, टिहरी गढ़वाल।
9 – नेगी, शन्तन सिंह, 1988, मध्य हिमालय का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली।
10 – चातक, गोविन्द, 2003, गढ़वाली लोकगीत एक सांस्कृतिक अध्ययन, तक्षशिला प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली।
11 – डबराल, शिवप्रसाद, 1932, ढोल सागर–संग्रह, वीरगाथा प्रकाशन, दोगड्डा गढ़वाल।